Chapter-7

==

:: सप्तम अध्याय ::

:: उपसंहार ::

==

:: सप्तम अध्याय ::

:: उपसंहार ::

"साहित्य" शब्द ही "सहित" से व्युत्पन्न हुआ है। "सहितस्य भावं साहित्यः" अर्थात् जहाँ "सहित" का भाव हो, वह साहित्य है। सहित के भी दो अर्थ हैं — "हितेन सह सहितम्" और दूसरा "सहित" अर्थात् साथ-साथ होना। प्रथम के अनुसार साहित्य जगत का हित करता है। वह जग-कल्याण या लोक-मंगल से जुड़ा हुआ है। कला मात्र का आदर्श बताया है — "सत्यम् शिवम् सुंदरम्"। अर्थात् साहित्य शिवम्-समन्वित होता है। साहित्य "शिवम्" से विमुख नहीं हो सकता। साहित्यकार की कोई भी विचारधारा या चिंतनधारा हो, वह मानव-विरोधी, कल्याण-विरोधी, कतई-कतई नहीं हो सकता। अतः साहित्यकार मात्र एक आलोक-स्तम्भ होता है। हमारी परंपरा में "कवि" शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक रूप में होता रहा है। "अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः" जो कहा गया है, उसमें

"कवि" के अन्तर्गत कथाकार एवं गद्यकार भी आ जाते हैं । अतः जो स्रष्टा होगा वह जगत-कल्याण से विमुख नहीं हो सकता । रचना उसका धर्म होता है । रचने में ही उसे आनंद की प्राप्ति होती रहती है । लोग कुछ भी कहें , आलोचक कुछ भी कहें , वह तो अपने रचना-धर्म को निभाता है , इस अकेली आस्था के साथ कि "कालो ह्ययम् निरवधि विपुला च पृथ्वी , उत्पत्स्यते अस्ति मम को अपि समानधर्मा" और ऐसे समानधर्मा मिल ही जाते हैं । शिवानीजी को भी मिल गये हैं , मिल रहे हैं । हिन्दी आलोचना-क्षेत्र में एक सिरे से बहुत से आलोचक उनकी कटु आलोचना करते रहे , उनके साहित्य को , कृतित्व को नकारते रहे । परंतु शिवानीजी लिखती रहीं । सहृदयों ने , भावकों ने उनका तहेदिल से स्वागत किया । यह स्वीकृति हल्की रस-वृत्तियों की स्वीकृति नहीं थी , क्योंकि व्यापक स्वीकार तो वहां भी होता है । बहुत-सा हल्का साहित्य , बाजारू साहित्य , बल्कि अश्लील और गंदा साहित्य बहुत ही बिकता है । भावकों में शिवानीजी को सकारने की जो वृत्ति है वह उस कोटि की नहीं है । संस्कारों की दृष्टि से , अभिरूचियों की दृष्टि से , शिवानीजी का साहित्य उच्चतम् श्लीलता की कोटि में आता है । अन्यथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे साहित्य एवं कला , धर्म एवं दर्शन , इतिहास एवं पुरातत्त्व के मर्मज्ञ नदीष्ण विद्वान उनको पढ़ने की हिमायत न करते । आचार्यजी ने एक स्थान पर स्वीकार किया है , जिसका उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठों में हो चुका है , कि जब-जब वे क्लान्त व श्लथ हो जाते हैं , शिवानी को पढ़ते हैं और उन्हें एक मानसिक-आत्मिक-आंतरिक तोष मिलता है । अतः शिवानीजी के पाठकों , सहृदय भावकों और उनके अध्येताओं को यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि आखिर-आखिर में भी शिवानीजी को सामाजिक-साहित्यिक मान्यता प्राप्त हुई । सम्प्रति दिसम्बर 1996 में महाराष्ट्र साहित्य अकादमी ने उनकी हिन्दी-सेवाओं को लक्ष्य कर पुरस्कृत किया है ।अवार्ड का

नाम है — " महाराष्ट्र भारती अखिल भारतीय हिन्दी सेवा " । महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी ने हिन्दी भाषा व साहित्य को उत्तेजन देने हेतु इसका प्रारंभ किया है । सन् 1995 का पुरस्कार सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि हरिवंशराय बच्चनजी को प्रदान किया गया था । सन् 1996 का पुरस्कार गौरा पंत शिवानीजी को प्रदान किया गया । पुरस्कार के अन्तर्गत 50,000 रुपये की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रमाणपत्र का समावेश होता है । यह पुरस्कार एक प्रकार से शिवानीजी के साहित्य की ~~xxxxx~~ विशद स्वीकृति का परिचायक है । यह इसलिए लिखना पड़ रहा है कि हिन्दी आलोचना कई बार खेमा-परस्त अभिगम से परिचालित होती रही है और उसके कारण शिवानीजी जैसे शब्दकारों को, साहित्य-शिल्पियों को उपेक्षा का शिकार भी होना पड़ा है । यहां एक बात ध्यातव्य होगी कि कुछ लोगों को कुछ समय के लिए, सब लोगों को थोड़े समय के लिए मूर्ख तो बनाया जा सकता है, परंतु सब लोगों को हमेशा-हमेशा के लिए मूर्ख नहीं बनाया जा सकता । शिवानीजी के उपन्यास बराबर प्रकाशित होते रहे हैं, यह लोक-स्वीकृति ही उनकी सबसे बड़ी सफलता है ।

साहित्य, कला, संस्कृति एवं संगीत की उपासिका एवं उद्घोषक शिवानीजी शुरू से मेरे प्रिय हिन्दी लेखकों में थीं । प्रसिद्ध साहित्यकार गुरुचरनदास ने लिखा है — " टु बी ह्युमन इज टु रीड, एण्ड टु रीड ए ग्रेट डील " । और इस शोध-प्रक्रिया के दौरान मैंने शिवानीजी को और भी अधिक, अनेक दृष्टिकोणों से, विशेषतः शाब्दिक-संरचना की दृष्टि से पढ़ा । बहुत पहले गुजरात युनिवर्सिटी से आचार्य प्रवर डा. अम्बाशंकर नागर जी के निर्देशन में सुश्री शशि-बाला पंजाबी ने शिवानीजी के उपन्यासों पर कुछ कार्य किया था । यह कार्य एक लघु-प्रबंध के रुप में था, क्योंकि एम.फिल. की उपाधि हेतु किया गया था । बाद में हमारी युनिवर्सिटी से शिवानीजी के कथा-साहित्य को लेकर डा. भरत वाघेला ने विभाग के वरिष्ठ

प्राध्यापक डा. प्रतापनारायण झाजी के निर्देशन में एक शोध-कार्य संपन्न किया । परंतु मेरा यह कार्य सर्वथा एक भिन्न अभिगम एवं दृष्टिकोण से किया गया है ।

ऊपर "सहित" शब्द का जो दूसरा अर्थ ग्रहण किया गया है — "सहितस्य" "साहित" अर्थात साथ-साथ होना — मेरा विषय उससे सम्बद्ध है । साहित्य में क्या साथ-साथ होता है — हृदय और मस्तिष्क, भाव और विचार, विषय और शिल्प, शब्द और अर्थ । मेरे विषय का जुड़ाव मस्तिष्क, विचार, शिल्प और शब्द से है । इसका अर्थ यह कदाई नहीं कि यह कोरे मस्तिष्क का व्यापार है । केवल मस्तिष्क का व्यापार तो साहित्य में चल ही नहीं सकता तो उसकी आलोचना में, उसके विवेचन एवं विश्लेषण में कहां से चलेगा ?

हिन्दी के उपन्यासकारों में शिवानीजी का एक निश्चित स्थान है । उन्होंने लगभग पन्द्रह-बीस उपन्यास दिये हैं, जिनमें "कृष्णकली", "चौदह फेरे", "मायापुरी", "भैरवी", "श्मशान-चम्पा", "कैंजा", "गैण्डा", "रतिविलाप", "सुरंगमा", "विवर्त", "तीसरा बेटा", "माणिक", "जोकर", "विषकन्या", "कालिन्दी", "उपप्रेती", "दो सखियां", "कृष्णवेणी", "कस्तूरी-मृग" आदि मुख्य हैं । भाषिक-संरचना के अध्ययन के सन्दर्भ में उनके वस्तु को देख जाना आवश्यक था, क्योंकि जब तक वस्तु की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं होगी, कोई भी व्यक्ति उसकी भाषिक-संरचना को नहीं समझ सकता । अतः प्रस्तुत अध्ययन में विषय-प्रवेश के अन्तर्गत उक्त उपन्यासों के वस्तु-पक्ष पर भी थोड़ा विचार किया गया है ।

शिवानीजी की गणना हिन्दी के श्रेष्ठ गद्यकारों में होती है, अतः हिन्दी के कतिपय श्रेष्ठ शैलीकारों के साथ शिवानीजी के गद्य की तुलना करने का एक उपक्रम भी यहां रहा है ।

शील और शैली का संबंध चोली-दामन सा पाया जाता है । मनुष्य का चरित्र , वह लाख सभ्यता और संस्कारिता के मुखौटे पहने , कहीं-न-कहीं प्रकट हो ही जाता है । सम्प्रति "चक्रवात" कहानी (लेखिका-लवलीन) को लेकर उठे ऊहापोह के सन्दर्भ में एक पाठक ने "सहवास" के लिए "बिस्तरबाजी" शब्द का प्रयोग किया था , उसे लेकर अपनी कैफियत में सुश्री लवलीन ने कहा है : "शब्द बड़े बेरहम होते हैं । आपके सोच और दिमागी स्तर की पोल खोल देते हैं । ऐसे शब्द पुरुष और केवल पुरुष ही इस्तेमाल कर सकते हैं , क्योंकि वह वास्तव में उनके लिए महज बिस्तरबाजी ही होती है । क्या कभी किसी स्त्री को ऐसे शब्द इस्तेमाल करते सुना है ? वेश्या भी इस शब्द का इस्तेमाल नहीं करती । स्त्री प्रेम में देह देती है और खुद को खो देती है और वह प्रायः फिर भी नहीं मिलता । " (देखिए : हंस : जनवरी-1997 : पृ. 14)

अभिप्राय यह कि व्यक्ति के शील या चरित्र का प्रभाव उसके लेखन पर किसी-न-किसी तरह पड़ता ही है । अतः शिवानीजी की भाषा का अनुशीलन करने से पूर्व उनके शैशव , माता-पिता के संस्कार , उनका अपना परिवेश , शिक्षा-दीक्षा , देश-भ्रमण , शांति-निकेतन का निवास , गुरुदेव का सानिध्य ; आचार्य क्षितिमोहन सेन , नंदलाल बसु , आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे महापुरुषों की प्रतिभा-पारस के स्पर्श इत्यादि को भी उकेरा गया है ; क्योंकि ये ही वे कुंभकार हैं जिन्होंने शिवानीजी की प्रतिभा-कुंभ को हाथ लगाया है ।

किसी भी लेखक के लिए जीवन का विस्तृत प्रत्यक्षदर्शी अपरागत अनुभव बहुत मायने रखता है । लेखक की अनुभव-पूंजी जितनी ही ज्यादा होगी , उसका लेखन भी उतना ही समृद्ध होगा । इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि शिवानीजी के पास अनुभव-पूंजी का विशाल कोश है । परंतु उनके अनुभव में जितना

विस्तार है , जितनी व्यापकता है , उतनी गहराई कदाचित नहीं ✕✕✕✕ है ; विशेषतः कुमाऊं के ग्रामीण-जीवन को लेकर । यहां अज्ञेयजी की एक बात का बरबस स्मरण हो रहा है । वे प्रायः कहा करते थे कि प्रेमचन्दजी में भारत के सामान्य , सर्वहारा , दलित-पीड़ित व्यक्ति का चित्रण तो मिलता है ; परंतु उच्चवर्ग या कुलीन वर्ग वहां प्रायः वर्ग-चरित्र के रूप में ही आया है । उसके चरित्र की सूक्ष्म महीन जटिलताओं को अभी चित्रित करना शेष है । शिवानीजी के कथा-साहित्य द्वारा कहीं-कहीं उसकी सम्पूर्ति होती हुई प्रतीत होती है । एक नया अनुभव-जगत और उससे संयुक्त भाषा-शिल्प हमें शिवानी में उपलब्ध होता है ।

जिस प्रकार कोई काम यदि हम करना चाहते हैं , तो उसका रास्ता भी तलाश लेते हैं ; ठीक उसी प्रकार कथा-साहित्य में भी विषय-वस्तु अपनी अभिव्यक्ति हेतु भाषा-शिल्प को खोज ही लेता है । जिस प्रकार का वस्तु होगा , भाषा भी उसके अनुरूप मिलेगी । वस्तु मनोवैज्ञानिक होगा , तो भाषा में भी सूक्ष्मता, संक्षिप्तता , प्रतीकात्मकता , संकेतात्मकता जैसे गुण स्वयमेव पाये जाते हैं । उसी प्रकार वस्तु यदि व्यंग्यात्मक हो तो भाषा भी व्यंग्य-भंगिमा से परिपूर्ण पायी जाती है । प्रस्तुत अध्ययन में शिवानीजी की भाषागत पड़ताल वस्तु के परिप्रेक्ष्य में की गई है और यह निष्कर्ष निकलता है कि शिवानीजी की भाषा इस निकष पर भी खरी उतरती है ।

चरित्र-सृष्टि में भी भाषा-कर्म की परीक्षा होती है । ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि भाषा व्यक्ति के चरित्र की उद्-घाटक होती है । अतः कथाकार से यह अपेक्षा रखी जाती है कि वह चरित्र के अनुरूप भाषा का प्रयोग करें या पात्रों से उस प्रकार की भाषा का प्रयोग करवावें । शिवानीजी के उपन्यासों में हम यह पाते हैं कि भाषा का प्रयोग चरित्र को केन्द्रस्थ रखते हुए हुआ

है । अतः आवश्यकतानुसार लेखिका ने बांग्ला , अंग्रेजी , संस्कृत , कुमाऊंनी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी बहुतायत से किया है । वस्तुतः उपन्यास की भाषा मानव-जीवन की भाषा होती है । अतः उपन्यासकार को चाहिए कि वह ऐसी भाषा का प्रयोग करें जैसी भाषा लोग बोलते हों । इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सभी उपन्यासों में लेखकीय भाषा का तो एक स्तर मिलता है , परंतु जहां पात्रों के कथोपकथन आये हैं , वहां लेखिका ने चरित्रों को ध्यान में रखते हुए भाषा का प्रयोग किया है ।

वस्तु और चरित्र के उपरांत उपन्यास में परिवेश या वातावरण या देशकाल के तत्व का भी विशेष महत्व होता है । आधुनिक कथा-साहित्य और पुराने कथा-साहित्य का एक व्यावर्तक अभिलक्षण यह देशकाल का तत्व है । पुराने कथा-साहित्य में प्रायः उसकी उपेक्षा होती है । परंतु आधुनिक कथा-साहित्य , विशेषतः उपन्यास-साहित्य , का तो यह प्राण तत्व है । यथार्थ देशकाल के चित्रण से वस्तु एवं चरित्र विश्वसनीय बनते हैं । बहुत से उपन्यासों की सफलता का रहस्य ही उसमें निहित है कि उनके रचनाकारों ने देशकाल का वर्णन बड़ी ही सूक्ष्मता से यथार्थ का निर्वाह करते हुए किया है । "देशकाल" में दो तत्व हैं — देश अर्थात् स्थान और काल अर्थात् समय । यहां लेखक के भाषा-कर्म की परीक्षा होती है । भाषा स्थान और समय के अनुसार होगी । एक विशिष्ट प्रदेश की भाषा में कुछ विशेषताएं लक्षित होंगी । भाषा तो समूचे हिन्दी क्षेत्र की एक होगी — अर्थात् हिन्दी भाषा । परंतु स्थान-विशेष के अनुसार उसमें निश्चित रूप से कुछ बदलाव आयेगा । उसी प्रकार एक निश्चित समय की भाषा का भी एक निश्चित रूप हुआ करता है । कुछ शब्द-प्रयोग एक विशेष समय में ही पाये जा सकते हैं । उदाहरणार्थ "कृष्णकली" उपन्यास में एक स्थान पर "प्रोफ्यूमो" शब्द मिलता है । छठे दशक के आसपास क्रिस्टाइन

विलर में सेक्स-कांड हुआ था जिसमें इंग्लैंड के तत्कालीन मंत्रीमंडल के एक मंत्री "प्रोफ्यूमो" भी फंसे हुए थी , अतः इस नाम का एक प्रतीक के रूप में लेखिका ने उपयोग किया है , क्योंकि "कृष्णकली" उपन्यास में निरूपित काल उसके पश्चात् का है । यदि उपन्यास में निरूपित काल पहले का हो , जैसा कि प्रायः ऐतिहासिक उपन्यासों में हुआ करता है , तो ऐसे शब्द-प्रयोग नहीं हो सकते और यदि कोई करे तो वहाँ काल-विरुद्ध दूषण माना जायेगा । प्रस्तुत प्रबंध में इस निकष पर भी शिवानीजी की भाषा का परीक्षण किया गया है और निष्कर्षतः पाया गया कि लेखिका ने यथासंभव परिवेश की भाषा का प्रयोग किया है । लेखक -कथाकार गोविंद मिश्र जिसे जमीन की भाषा कहते हैं तथा राल्फ फोक्स महोदय जिसे मानव-जीवन का गद्य (ग्रोज़ आफ मैन्स लाईफ) कहते हैं , वह जमीन की भाषा का प्रयोग हमें शिवानीजी में भी मिलता है । नगरीय जीवन के उपरांत शिवानीजी की कथा-सृष्टि में कुमाऊँ प्रदेश का परिवेश आता है । कुमाऊँ प्रदेश के चित्रण में हमें भाषा में वहाँ की मिट्टी की सोंधी गंध प्राप्त होती है । यद्यपि इस संदर्भ में शिवानीजी प्रेमचन्द , रेणु , नागार्जुन , शैलेश मटियानी आदि की बराबरी नहीं कर सकतीं ; तथापि उनके एतद्विषयक प्रयास एवं निष्ठा की प्रशंसा तो करनी ही पड़ती है ।

प्रस्तुत अध्ययन शिवानीजी की भाषा पर है , अतः इसमें "शब्द" पर विशेष रूप से विचार हुआ है । शब्द भाषा की सर्वाधिक छोटी सार्थक ~~इकाई~~ "इकाई " है । शिवानीजी के उपन्यासों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि उनमें संस्कृत , बांग्ला, अंग्रेजी , अरबी-फारसी , पंजाबी , गुजराती , कुमाऊँनी , ब्रज आदि कई भाषाओं तथा बोलियों के शब्द प्राप्त होते हैं । संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव और देशज शब्दों के भी सार्थक प्रयोग हुए हैं । किसी भी भाषा में साहित्यकार के प्रदान का

मूल्यांकन x मूल्यांकन इस आधार पर भी हो सकता है कि उसने उस भाषा-विशेष को कितना समृद्ध किया , उसकी शब्द-संपदा में कितनी अभिवृद्धि की , कितने नये शब्द-प्रयोग उसने दिये , कितने नये क्रिया-रूपों का प्रयोग उसने किया , कितने नये शब्द मुद्रित किये , अपनी ज़मीन से कितने शब्दों को लाया , कितने पुराने शब्दों को नये ढंग से प्रयुक्त किया ; कितने नये प्रतीक , नये विशेषण , नये उपमान वह उपहार रूप में ले आया ; कहावतों और मुहावरों का प्रयोग उसमें किस रूप में मिलता है ; क्या उसने प्रचलित कहावतों और मुहावरों की सहायता से भाषा में कुछ नया निष्पन्न करने का प्रयत्न किया है । इन प्रश्नों की सूक्ष्म पड़ताल से ज्ञात होता है कि इस दिशा में शिवानीजी का प्रदान अप्रतिम कहा जा सकता है । शिवानीजी के भीतर का "कवि" यहाँ बोलता हुआ-सा प्रतीत होता है ।

"कुटिल चालों की वर्षाधारी " , " बंकिम कटाक्ष का मैग्नेट " , "कैशोर्य की सीढ़ी " , "सरप्राईज़ का तोहफ़ा " , "प्रश्न-गुलेल का रबर " , "खाँसी का सिग्नल " , "अश्लील ठहाकों की पिचकारियाँ " , "हनीमून की हज" , " यौवन का उत्कोच" जैसे नये रूपक भाषा की संपन्नता में वृद्धि करते हैं । इसी प्रकार नये विशेषण , नये उपमान और नये प्रतीक भी मिलते हैं ।

कहावतों और मुहावरों के प्रयोग से शिवानीजी की भाषा में सरलता , मधुरता एवं स्वाभाविकता का समावेश हो गया है । इस संदर्भ में लेखिका ने कुछ नये प्रयोग भी किए हैं । शिवानीजी के उपन्यासों में हमें संस्कृत , बाँग्ला , अँग्रेजी , कुमाऊँनी आदि भाषाओं के नाना उद्धरण प्राप्त होते हैं । उससे पाठक का ज्ञान-वर्द्धन तो होता ही है , लेखिका की बहुश्रुतता का परिचय भी मिल जाता है । भाषा में जब कोई विचार घनीभूत स्वरूप धारण करता है , तब वह सूक्ति का रूप ले लेता है । शिवानीजी

की भाषा में साहजिक सूक्तियों की उपस्थिति हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं । ये सूक्तियां सहज-स्वाभाविक प्रतीत होती हैं और ऊपर से आरोपित हों ऐसा कभी नहीं लगता । जिस प्रकार सहज अनायास अलंकरण देह के सौन्दर्य में वृद्धि करता है , ठीक उसी प्रकार इन सूक्तियों से उनकी भाषा में लालित्य की सृष्टि होती है ।

उपन्यास में भाषा का प्रवाह नदी की भाँति प्रवाहित होता है । नदी का प्रवाह सब स्थानों पर एक-सा नहीं होता है । कहीं क्षिप्र , कहीं मंथर , कहीं उथला , कहीं गहरा , कहीं सिमटा हुआ तो कहीं विस्तृत । ठीक उसी तरह शिवानीजी के गद्य में भी हमें उपन्यास के रूपबन्ध तथा परिस्थितियों एवं पात्रों की विविधता में नाना प्रकार की शैलियां प्राप्त होती हैं ; जिनमें समासशैली , व्यासशैली , प्रौढ़ या विदग्धशैली , सरस-मधुर शैली, व्यंग्यात्मक शैली , आंचलिक शैली , आलंकारिक शैली , संस्कृत-परिनिष्ठित शैली आदि मुख्य हैं ।

कुछेक उपन्यासों को छोड़कर शिवानीजी के उपन्यासों का रूपबन्ध लघु-उपन्यास का रहा है । अतः लघु-उपन्यास की प्रकृति के अनुरूप शिवानीजी की शैली में संक्षिप्तता , सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता प्रभृति गुण उपलब्ध होते हैं ।

उपन्यास में अनेक स्थानों पर हमें हास्य-व्यंग्य से संपृक्त शैली के दर्शन होते हैं जिससे लेखिका की विनोदी-प्रकृति (सेन्स आफ ह्यूमर) का परिचय मिलता है । उपन्यास में पाये जाने वाले कथोपकथन सार्थक प्रत्युत्पन्न-मति-संपन्न और सटीक हैं , जिससे लेखिका की वार्ता-कला की प्रतीति होती है । नवीन भाषाभिव्यंजना तथा बहुश्रुतता उनकी गद्यशैली के सहज अभिलक्षण से प्रतीत होते हैं । यद्यपि शिवानीजी की भाषा उक्त अनेकानेक गुणों से संपन्न है , तथापि उनमें कतिपय दोष भी पाये जाते हैं ।

परंतु ये दोष इक्षु-दण्ड में गांठ के समान या गहनों के सुवर्ण में तांबे की तरह हैं, अतः क्षम्य कहे जा सकते हैं।

शिवानीजी के साहित्य के विविध आयामों को लेकर अभी और अध्ययन हो सकते हैं। उनकी कहानियों की भाषा का भी अध्ययन हो सकता है। इसी दिशा में व्याकरण, भाषा-विज्ञान, शैली-तात्त्विक अभिगम प्रभृति को लेकर "माइक्रो" टाईप शोध-कार्य हो सकता है। भाषा के किसी एक पक्ष को लेकर भी अनुशीलन किया जा सकता है। मुहावरों और कहावतों को लेकर सूक्ष्म अध्ययन भी हो सकता है।

अन्ततः यही प्रार्थना है कि मेरी अपनी सीमाएं हैं, मर्यादाएं हैं। मैं तो इस आलोचना-पथ की एक सामान्य पथिक-मात्र हूं। अभी चलना-भर सीखा है। वस्तुतः पी-एच.डी. की उपाधि हेतु जो शोध-कार्य होते हैं, वे तो अनुसंधान और आलोचना के प्रवेश द्वार होते हैं। जिस प्रकार कविता भाषा में मनुष्य होने की तमीज़ है, यदि यही मुहावरा प्रयुक्त किया जाय तो, आलोचना साहित्य में विवेक और औचित्य की तमीज है। यदि वह तमीज़, वह समझ कुछ आ पायी है, तो स्वयं को कृतार्थ समझूंगी।

----: इति शुभम् :----